ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

हिंदी जाति : एक अवधारणा, एक विमर्श

डॉ. बीरेन्द्रसिंह

सहायकप्राध्यापक, हिन्दीविभाग, स्कॉटिश चर्च कॉलेज, कोलकाता

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 10 December 2018

Keywords
जातीयता और राष्ट्रीयता, हिंदी जाति, हिंदी नवजागरण.

ABSTRACT

वर्तमान वैज्ञानिक युग में जहाँ तकनीकी प्रगति हमारी सोच से भी अधिक तीव्रता से विकसित हो चली है 'जाति' का मुद्दा अपने-अपने अर्थों के साथ अधिकांशतः अब भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। 'जाति' और 'जातीय चेतना' जैसे शब्दों के आते ही उसके 'कास्ट' यानि बिरादरी वाले अर्थ मस्तिष्क में अनायास ही गूँज उठते हैं।'जाति' का कोई दूसरा अर्थ भी हो सकता है यह भावना अब भी बहुतों के लिए अबूझ है – खासकर हिन्दी समाज में। 'जाति' का वह अर्थ जहाँ परस्पर एकत्व का भाव धर्म, वर्ण और समुदाय के संकीर्ण कटघरे से परे कोई अभिव्यक्ति पाता हो– यहाँ नदारद है। इकबाल के "हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्तां हमारा" का 'हिन्दी' अब कहीं देखने नहीं मिलता। यहाँ हिन्दू हैं, मुसलमान हैं; ब्राह्मण हैं, शुद्र हैं; सवर्ण हैं, दलित हैं और तो और यू.पी. वाले हैं,उत्तराखंडी हैं; बिहारी हैं,झारखंडी हैं – परन्तु 'हिन्दी' कहीं नहीं हैं। बंगाली, मराठी, गुजराती, पंजाबी या कि तमिल जाति के बरक्स हिन्दी जाति नहीं है।जब ये तमाम जाति के लोग आपसी एकत्व भावना के साथ भारत देश की समृद्धि में हाथ बँटा रहे हैं तब हिन्दी जाति वाले क्या कर रहे हैं?जबकि तुलनात्मक दृष्टि से हिन्दी प्रदेश इन सभी जातीय प्रदेशों से कहीं अधिक विशाल, कहीं अधिक समृद्ध और कहीं अधिक सम्भावनाओं से भरा हुआ है। इस आलेख में हम हिंदी जाति की बिडंबनापूर्ण स्थिति को एक विमर्श रूप में विश्लेषित करने का प्रयास करेंगे।

प्रस्तावना

जाति शब्द मुख्यतः दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। पहला कास्ट (Caste) अर्थात् बिरादरी और दूसरा नेशनलिटी (Nationality) अर्थात् कौम। बिरादरी के अर्थ में प्रयुक्त जाति शब्द सामन्ती समाज की देन है। जबकि नेशनलिटी के रूप में प्रयुक्त होने वाला अर्थ आधुनिक भी है और वैज्ञानिक भी। वैज्ञानिक समाजवाद की अवधारणा के विकास के साथ-साथ विचारकों ने दुनिया में जातीय चेतना को विकसित होते हुए अनुभव किया है। ब्ला. ई. लेनिन , जोजेफस्तालिन और बेनेडिक्टऐंडरसन से लेकर भारत के रवीन्द्रनाथ टैगोर , पार्थोचटर्जी, आशीष नंदी और अमर्त्य सेन ने इस अवधारणा को किसी न किसी रूप में पुष्ट और समृद्ध किया है। हिन्दी जाति की पहचान को रेखांकित करते हुए मीर तकी मीर , भारतेन्दुहरिश्चन्द्र, फ्रेडरिकपिन्काट, डॉ. मुहम्मद इकबाल, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा,सुनीतिकुमारचाटुर्ज्या एवं डॉ. रामविलास शर्मा के चिंतन का काफी महत्व है।

कम्युनिस्ट घोषणापत्र में मार्क्स और एंगेल्स ने जातीय निर्माण की समस्या के सन्दर्भ में पूंजीवाद के विकास की प्रक्रिया एवं विभिन्न मंजिलों पर विस्तार से लिखा है। पूंजीवादी विकास से जातीय निर्माण की प्रक्रिया के जुड़ाव की बहुत स्पष्ट व्याख्या लेनिन ने की है। मशीनी उद्योग की शुरूआत से पहले के पूंजीवाद को अगर व्यापारिक पूंजीवाद कहा जाए तो लेनिन के मतानुसार जातीय निर्माण की प्रक्रिया इसी व्यापारिक पूंजीवाद से शुरू होती है। स्तालिन की रचनाओं में लघुजाति (नैशनैलिटी) और महाजाति (नेशन) का भेद किया गया है जबकि लेनिन कीजाति संबंधी अवधारणा सामंती व्यवस्था के अन्तर्गत अवस्थित स्थानीय बाजारों से जुड़ती है। इसप्रकार व्यवस्थित पूँजीवाद की शुरूआती कड़ी के रूप में देखते हुए स्थानीय बाजारों वाला व्यापारिक पूँजीवादलेनिन के मतानुसार जातीय निर्माण का प्रस्थानबिन्दु है।

बीसवीं सदी के अन्तिम दशकों तक जाति संबंधी अवधारणाओं का महत्व निर्विवाद रहा। तदुपरान्त एक ऐसी विचारधारा भी देखने को मिलती है जिसके अनुसार जाति की धारणा सम्पूर्णतः कल्पित है। 1983 में "इमैजिन्डकम्युनिटीज"

RRIJM 2015, All Rights Reserved

नाम से बेनेडिक्टऐंडरसन की एक किताब आयी जिसके अनुसार जाति का कोई अस्तित्व नहीं होता। वह मन की कल्पना है जो मानव-समुदायों पर आरोपित कर दी जाती है। जिसे हम जाति, राष्ट्र या नैशनलिटी या नैशन कहते हैं, वह कल्पित समुदाय है – इस धारणा के अनुसार जातीय संस्कृति नाम की कोई चीज नहीं होती, जातीय इतिहास की बात करना भी व्यर्थ होगा। भूमंडलीकरण की नीति से यह धारणा बहुत अच्छी तरह मेल खाती है। सबाल्टर्नस्टडीज के विद्वान सुदीप्त कविराज व पार्थ चटर्जी की विचारभूमि मूलतः वही है जो ऐंडरसन की है।भारत एक बहुजातीय राष्ट्र है। इन जातियों के गठन का इतिहास जाने बिना सुदृढ़ राष्ट्र की बात नहीं की जा सकती।आज केइसविखंडनकारी दौर में जातीय एकता को दृढ़ करने वालो तत्वों पर विचार करना समय की एक बड़ी जरुरत माना जा सकता है।

हिंदी जाति की अवधारणा

डा. धीरेन्द्र वर्मा ने सन् 1930 में अपनी पुस्तक "हिन्दी राष्ट्र या सूबा हिन्दुस्तान" प्रकाशित करते हुए शुरूआती 'वक्तव्य' में लिखा, " 'हिन्दी राष्ट्र' की इस मेरी कल्पना के संबंध में इस समय मतभेद हो सकता है किन्तु मेरे यह विचार बहुत वर्षों के अनुभव, मनन तथा अध्ययन के फल स्वरूप हैं ; अतः मेरा दृढ़ विश्वास है कि इन्हें अपनाये बिना हिन्दी-भाषा-भाषियों का कल्याण संभव नहीं है। मुझे अत्यन्त हर्ष होगा यदि यह पुस्तक हिन्दी-भाषा-भाषी नेतागण , विद्वद्वर्ग तथा संपादकमंडल का ध्यान इस अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर आकर्षित कर सके।"[1] इसी के साथ उन्होंने हिन्दी राष्ट्र या सूबा हिन्दुस्तान का एक मानचित्र भी दिया।

पुस्तक में डा. धीरेन्द्र वर्मा ने 'राष्ट्र शब्द की परिभाषा' के संबंध में अपने मनोभाव कुछ इसतरह प्रकट किए, "आजकल राष्ट्र (Nation) शब्द का प्रयोग बहुत होता है किन्तु इसका ठीक अर्थ क्या है इस पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। राजनीति-शास्त्र के पण्डितों के मत में 'राष्ट्र उस जन समुदाय का नाम है जिसमें लोगों की स्वाभाविक समानताओं के बन्धन ऐसे दृढ़ और सच्चे हों कि वे एकत्र रहने से सुखी व अलग अलग हो जाने से असन्तुष्ट रहें , और ऐसी समानताओं के बन्धनों से असम्बद्ध अन्य लोगों की पराधीनता को सहन न कर सकें।' देश (Country), राज्य (State), वर्ग (race) तथा धर्म (religion) से राष्ट्र भिन्न है , यद्यपि ये सब राष्ट्र के आवश्यक अंग अवश्य हैं।"[2] और एक राष्ट्र में 'स्वाभाविक समानताओं के बन्धन' कुछ इस प्रकार गिनाए – "1. देश सम्बन्धी एकता , 2. हानि लाभ की एकता , 3. राज्य की एकता , 4. भाषा की एकता, 5. धर्म्म की एकता , 6. वर्ग की एकता और 7. इस एकता का अभिमान जो ऐतिहासिक पूर्वजों के गौरव व अन्य ऐसे ही कारणों से उत्पन्न होता है।" [3] हम आगे देखेंगे कि डा. धीरेन्द्र वर्मा के राष्ट्र निर्माण के ये स्वाभाविक समानताओं के बन्धन ही डा. रामविलास शर्मा के यहाँ जातीय निर्माण के महत्वपूर्ण तत्त्वों यानि सामान्य प्रदेश, सामान्य भाषा, सामान्य आर्थिक जीवन और सामान्य संस्कृति के प्रतिरूप बन जाते हैं।

भाषा ही किसी जाति की पहचान का सबसे बड़ा लक्षण है, इसकी जोरदार अभिव्यक्ति करते हुए डा. वर्मा ने स्पष्ट लिखा, "साधारणतया हम कह सकते हैं कि राष्ट्र की एक मुख्य तथा प्रत्यक्ष पहिचान भाषा की एकता है, अतः भारत के जितने भूमि-भाग में हमारी भाषा , अर्थात् हिन्दी या हिन्दुस्तानी मातृभाषा की तरह बोली जाती हो वह हमारा राष्ट्र है।"[4] और इस भाषायी क्षेत्र की सीमाएँ इसप्रकार आंकीं , "पश्चिम में राजपुताने के जैसलमीर राज्य से लेकर पूर्व में बिहार के भागलपुर जिले तक तथा उत्तर में यमुना और सतलज के बीच में अम्बाला नगर से लेकर दक्षिण में मध्य प्रान्त के रायपुर तक के भारत के शेष मध्य भाग के इसप्रकार सहसा विभाग करना सरल नहीं है। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि इस सम्पूर्ण भूमि-भाग में एक ही भाषा हिन्दुस्तानी बोली जाती है , यद्यपि लोगों की ठेठबोलियों के रूप कुछ-कुछ भिन्न अवश्य हैं।"[5] यहाँ डा. धीरेन्द्र वर्मा ने भाषा और बोली के अन्तर को एकदम स्पष्ट विचारते हुए हिन्दी जाति की एक भाषा हिन्दी माना जिसकी ठेठबोलियों के रूप भिन्न-भिन्न हैं।

इसप्रकारडा. धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी जाति की उपस्थिति न केवल रेखांकित करते हैं बल्कि उसे बिल्कुल पुख्ता ढंग से एक स्पष्ट पहचान देते हुए उसके हित-अनहित और भविष्य को भारत की अन्य जातियों से अलगाते हैं। इस क्रम में उन्होंने हिन्दी जाति की अन्तर्भूत जातीय चेतना की कमी पर टिप्पणी करते हुए लिखा , "जब एक भाषा होने के स्पष्ट ऐक्य को ही अपने लोग नहीं समझते तो हानि-लाभ की एकता का सूक्ष्म प्रश्न तो और भी जटिल है। इस संबंध में इस समय इतना ही कहना बहुत होगा कि हिन्दी-भाषा-भाषिओं का हानि-लाभ – चाहे वह आर्थिक , राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक अथवा साहित्यिक किसी प्रकार का भी हो – भारत के अन्य भाषा-भाषियों से पृथक है और रहेगा।"[6]

हिन्दी जाति की अवधारणा के सन्दर्भ में प्रख्यात आलोचक,भाषाचिंतकडा. रामविलास शर्मा के चिंतन की एक महत्वपूर्ण भूमिका है जिस पर आज के विखंडनकारी दौर में विचार करना समय की एक बड़ी जरुरत माना जा सकता है।

RRIJM 2015, All Rights Reserved

वे आधुनिक जातियों के गठन की एक सामान्य प्रक्रिया बताते हुए लिखते हैं – "मनुष्य पहले छोटे-छोटे गण-समाजों में संगठित होते हैं , फिर ये विभिन्न गण-समाज अपने गण संघ बनाते हैं। ...गण व्यवस्था समाप्त होने पर सामन्ती व्यवस्था का का चलन होता है। रक्त-संबंध पर आधारित गण- समाज टूट जाते हैं या बड़े समाजों में समेट लिए जाते हैं। वर्णाश्रम धर्म वाला यह छोटे पैमाने का उत्पादन करने वाला समाज जनपदों में गठित होता है। पुनः व्यापार के प्रसार और पूँजीवादी सम्बन्धों के निर्माण के साथ ये जनपद अलगाव की स्थिति में नहीं रह जाते। सामन्ती व्यवस्था के जनपद टूट जाते हैं या और बड़े संगठनों में समेट लिए जाते हैं। इस नए संगठन का नाम है जाति (नेशन)।" [7]डा. रामविलास शर्मा आधुनिक जाति के स्वरूप की पहचान कराने वाले चार प्रमुख तत्व बताते हैं- "सामान्य प्रदेश , सामान्य भाषा, सामान्य आर्थिक जीवन और सामान्य संस्कृति। "आज की आधुनिक बांग्ला , मराठी, पंजाबी या गुजराती आदि जातियाँ इन्हीं सामान्य तत्वों के आधार पर संगठित होकर विकासमान हैं।

जाति के रूप में हिन्दी या हिन्दुस्तानी शब्दों का इतिहास बहुत पुराना नहीं है परन्तु जाति के रूप में इस जाति की निर्माण प्रक्रिया सदियों पुरानी है। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं, "हिन्दुस्तान एक जाति विशेष का इतिहास सम्मत प्रदेश है। इस जाति का गठन अंग्रेजों के आने से पहले हुआ। इसी कारण मुसलमान और अंग्रेज दोनों ही उसे आसानी से पहचान सके। यह धारणा भ्रान्त है कि भारत के अर्थतंत्र में अंग्रेजों की भारत-विजय से पहले कोई परिवर्तन न हुआ था। जिस पद्धति से यूरुप में रूसी, फ्रांसीसी, ब्रिटिश आदि जातियों का निर्माण हुआ था , मूलतः उसी पद्धति से , अर्थात् व्यापार द्वारा पूँजीवादी सम्बन्धों के प्रसार से यहाँ हिन्दुस्तानी जाति का गठन हुआ। भारत में अकेले हिन्दुस्तानी जाति का गठन नहीं हुआ, यहाँ बँगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाएँ बोलने वाली जातियों का भी गठन हुआ।" [8]जाति के निर्माण में भाषा अहम् भूमिका निभाती है। आधुनिक भारतीय भाषाएँ संस्कृत के समानान्तर बोली जाने वाली भाषाओं से उत्पन्न हुईं हैं। वे संस्कृत का विकृत रूप नहीं हैं, जैसा की साधारणतः मान लिया जाता है। इन भाषाओं के बोलने वालों का जातीय निर्माण अपनी सहज स्वाभाविक प्रक्रिया के तहत ब्रिटिश राज कायम होने से पहले हुआ था।

जातीयता और राष्ट्रीयता

डा. शर्मा के अनुसार आधुनिक जातियों का यह विकास विभेदक और प्रतिस्पर्धी न होकर व्यापक अर्थ में राष्ट्रीय विकास का समानार्थी होता है।वे लिखते है - "राष्ट्र और जाति परस्पर विरोधी नहीं हैं। राष्ट्र की संज्ञा अधिक व्यापक है। भारतीय सन्दर्भ में प्रादेशिक जातियाँ राष्ट्र की अंतर्वस्तु हैं। इनके बिना राष्ट्र की संज्ञा खोखली है। इसी तरह वर्ग – पूँजीपति, मजदूर आदि – जाति की अंतर्वस्तु हैं। विभिन्न जातियों के समानधर्मा वर्ग आपस में जुड़कर राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करते हैं।" [9]अर्थात् जाति की यह अवधारणा सामाजिक वर्गीय-संघर्ष को और अधिक स्पष्ट करने के साथ-साथ राष्ट्रीयता को और अधिक पुष्ट करने वाली भी ठहरती है।

भारत एक बहुजातीय राष्ट्र है। यहाँ की विभिन्न जातियों की जातीय चेतना को समझे बिना सुदृढ़ राष्ट्र के निर्माण की बात सोचना बेमानी ठहरता है। डा. शर्मा जातीय चेतना के साथ राष्ट्रीय चेतना का संबंध दर्शाते हुए लिखते हैं - "जातीय चेतना वह उत्स है जिससे देशप्रेम और मानव प्रेम की धाराएँ फूटती हैं। बंगभंग के विरोध ने जातीय चेतना को , उसके साथ राष्ट्रीय चेतना को समृद्ध किया। जातीय चेतना केवल भाषागत , प्रदेशगत चेतना नहीं है। उसमें साम्राज्यविरोध, सामंती रूढ़ियों का विरोध तथा समाज को पुनर्गठित करने की धारणाएँ शामिल हैं।" [10]इसतरहडा. शर्मा जातीयता और राष्ट्रीयता को समग्र मानवीय विकास के हित में एक ही सिक्के के दो भिन्न पहलूओं के तौर पर स्थापित करते हैं।

डा. धीरेन्द्र वर्मा ने भी 'राष्ट्रीय भावना को जगाना होगा' की आवश्यकता महसूसते हुए पहले जातीय जाग्रति को अहम माना था। उन्होंने लिखा, "बंगाल में राष्ट्रीयता के लक्षण होने पर भी इस भाव की जनता में जाग्रति बंगभंग के आन्दोलन से हुई थी। अपने को एक समझने का यह भाव इस समय हिन्दी-भाषा-भाषियों में नहीं है। इस भाव को जाग्रत करने के लिये सब से प्रथम यह नितान्त आवश्यक है कि भाषा , राज्य, हानिलाभ तथा देश आदि की एकताओंको पुष्ट कर के इस भाव की नींव सुदृढ़ कर ली जाय। तभी अवसर मिलने पर इस भाव का प्रत्यक्ष दर्शन भी हो सकेगा।" [11]इसतरहजातीयता का भाव राष्ट्रीयता के विकास की पहली शर्त बनकर आता है।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय चेतना के उदयएंव विकास में हिन्दी जाति की जीवट संघर्ष चेतना का विशेष योगदान है। 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम और हिन्दी नवजागरण ने हिन्दी जाति की जातीय चेतना को जिस रूप में बल प्रदान किया सन्देह नहीं कि राष्ट्रीय चेतना भी उसी रूप बलवती हुई। 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम हमारा राष्ट्रीय संग्राम होने के साथ ही साथ जातीय संग्राम भी था जिसमें हिन्दी जाति ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। डा. शर्मा स्पष्ट करते हैं – "जैसे हिन्दी राष्ट्रभाषा है और हिन्दी जनता की जातीय भाषा वैसे ही 1857 का गदर भारत का राष्ट्रीय

RRIJM 2015, All Rights Reserved

स्वाधीनता संग्राम है और हिन्दी प्रदेश की जनता का जातीय संग्राम भी।"[12]इसी जातीय संग्राम की शक्ति से भयभीत होकर अंग्रेजों ने एक कुटिल रणनीति के तहत हिन्दी जाति को तोड़ने का अभियान चलाया। 'हिन्दी जाति' को 'हिन्दू जाति' एवं 'मुस्लिम जाति' में बाँटकर प्रचारित किया गया। धर्म के आधार पर इसतरह के विभाजन को बढ़ावा देना अंग्रेजों की सोची-समझी रणनीति का परिणाम था।

इसी रणनीति का अगला माध्यम भाषा बनती है। चूँकि भाषा की एकता जाति की एकता का सबसे महत्वपूर्ण अभिलक्षण है अतः हिन्दी और उर्दू के विवाद को बढ़ावा दिया गया। एक ही भाषा की दो शैलियों को दो भिन्न भाषाओं के रूप में प्रचारित करते हुए दो धर्मों से जोड़ दिया गया। डा. रामविलास शर्मा लिखते हैं – "अंग्रेज कूटनीतिज्ञों ने यहाँ एकता के तत्वों को बराबर दबाने की कोशिश की और अलगाव के तत्वों को भरसक बढ़ावा दिया। जिन हिन्दुओं और मुसलमानों ने मध्यकालीन धर्म की खाई को पाट लिया था और हर प्रदेश में एक संयुक्त जातीयता का विकास किया था , वे शब्दावली और लिपि के भेद को अवश्य दूर कर लेते और एक शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण करते। लेकिन अंग्रेजों ने इन संभावनाओं को खत्म कर दिया। उन्होंने हिन्दी-उर्दू की दो शैलियों को दो जातीयों की भाषा का रूप दे दिया और भाषा को जातीय उत्पीड़न का साधन बनाया। इसीलिए यह बात मुश्किल से कुछ लोगों की समझ में आती है कि अंग्रेजी राज से पहले 'हिन्दुस्तान' के हिन्दू और मुसलमान एक जाति के थे और आज भी एक ही जाति के हैं। धर्म के आधार पर न कहीं भाषाओं में भेद उत्पन्न हुआ है, न कहीं जातियाँ बनी हैं।"[13]डा. शर्मा अपने विस्तृत लेखन-कर्म द्वारा आजीवन इस आधारभूत सच्चाई को स्थापित करने का प्रयास करते रहे।

हिन्दी जाति और नवजागरण

हिन्दी जाति के भीतर जातीय चेतना के विकास में हिन्दी नवजागरण का विशेष महत्व है। हिन्दी नवजागरण हिन्दी जाति का संगठित आन्दोलन है। बांग्ला , मराठी या तमिल नवजागरण की भाँति हिन्दी नवजागरण की अपनी विशेषताएँ हैं साथ ही वह राष्ट्रीय नवजागरण का अंग भी है। हिन्दी नवजागरण की अपनी विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर ही डा. शर्मा लिखते हैं – "भारत के राष्ट्रीय नवजागरण का संबंध सामान्यतः राजा राममोहन राय से जोड़ा जाता है। हो सकता है, बंगाल के लिए यह सही हो। आवश्यक नहीं कि हर प्रदेश में वैसी ही प्रक्रिया घटित हुई हो।" [14] 'हिन्दी जाति' की वास्तविकता से सरोकार न रखने वाले लोग 'हिन्दी नवजागरण' को भी नकार देते हैं। बांग्ला नवजागरण , मराठी नवजागरण या तमिल नवजागरण के बरक्स हिन्दी नवजागरण उन्हें कपोल-कल्पित लगता है। परन्तु वास्तव में हिन्दी नवजागरण हिन्दी क्षेत्र की हिन्दी जाति के बीच जातीय चेतना के उदय एवं विकास की संघर्ष गाथा है।

डा. रामविलास शर्मा 1857 और हिन्दी नवजागरण की अपनी स्थापनाओं द्वारा हिन्दी जाति की जिस शक्ति का परिचय देते हैं, बाद की परिस्थितियों में खासकर स्वतंत्रता के बाद हिन्दी जाति अपनी इस शक्ति को लगातार विस्मृत करती गई है। यही कारण है कि आज की बहुत-सी समस्याओं मसलन साम्प्रदायिकता, भाषिक कट्टरता, क्षेत्रीयता आदि के मूल में हिन्दी जाति के भीतर जातीय चेतना के अभाव को मूल कारण के रूप में परिलक्षित किया जा सकता है। इन परिस्थितियों में हिन्दी जाति की अवधारणा को फिर से देखे जाने की महती आवश्यकता है। डा. शर्मा लिखते हैं – "भारत के अन्य जातीय प्रदेशों की अपेक्षा हिन्दी प्रदेश के लोगों में जातीय चेतना का अभाव है। यह इसलिए नहीं है कि इनमें देशभक्ति बहुत ज्यादा है, वरन् इसलिए कि यहाँ जात-बिरादरी के बन्धन अब भी बहुत मजबूत हैं और जनपदीय अलगाव काफ़ी है। इसके अलावा धार्मिक विद्वेष से जनता विभाजित है। साहित्य में हिन्दी-उर्दू का जैसा भेद है, वैसा भेद अन्य किसी प्रदेश में नहीं है।"[15]

हिन्दी जाति : समय की आवश्यकता

हिन्दी जाति की अवधारणा को उसके सही परिप्रेक्ष्य में समझने की आज बहुत ज्यादा जरूरत है। जातीय चेतना की समझ अपने सही सन्दर्भों में किसी जाति के विकास का नियामक तत्व होती है। डा. धीरेन्द्र वर्मा ने "हिन्दी राष्ट्र या सूबा हिन्दुस्तान" लिखते हुए हमारी जातीय चेतना को उद्दीप्त किए जाने की बात बार-बार कही। उन्होंने लिखा , "यह मानना पड़ेगा कि बंगाल, आन्ध्र, गुजरात तथा महाराष्ट्र आदि की तरह भाषा, राज्य, हानि-लाभ तथा देश की एकता अभी हिन्दी राष्ट्र में उतनी स्पष्ट नहीं है। यहां के लोग अपनी एकता को अभी अनुभव नहीं करते। इसका कारण यह है कि हम लोग बहुत समय से पददलित थे और अब भी भारत के अन्य लोगों से इतने पिछड़े हुए हैं कि अभी तक दूसरों के अधीन रहने में अपमान नहीं समझते। दूसरों के साथ में रहते रहते हमारा व्यक्तित्व नष्ट हो गया है। इस राष्ट्रीय व्यक्तित्व का फिर से उद्धार होना आवश्यक है।" [16] हिन्दी जाति पर विचार करने वाले सभी पुरोधाओं ने भारत की एकता और प्रगति को और अधिक पुष्ट करने के लिए हिन्दी जाति को समय की एक बड़ी आवश्यकता माना है।

हिन्दी क्षेत्र के पिछड़ेपन का सबसे प्रमुख कारण हिन्दी जाति के अन्तर्गत जातीय चेतना का अभाव होना ही है। आधुनिक जातीयता के सारे लक्षण हिन्दी प्रदेश में एक ही

जाति – हिन्दी जाति – के अस्तित्व को पुख्ता करते हैं जबकि व्यवहार में अधिकांशतः इस वास्तविकता से मुँह मोड़ने की प्रवृति मिलती है। इस सिलसिले में सुधीर रंजन सिंह अपनी पुस्तक 'हिन्दी समुदाय और राष्ट्रवाद' में लिखते हैं – "हिन्दी समुदाय, इसमें शक नहीं, यह कहने में असफल है कि 'हम हैं'। इस रूप में यह राष्ट्रीय हित में परिपक्व जिम्मेदारी उठाने में असफल है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है। वर्तमान दशा को देखते हुए यहाँ कहने की आवश्यकता नहीं है कि देश के सबसे बड़े समुदाय को आत्म-पहचान से दूर रखने का अर्थ है जाति और धर्म से जुड़ी पहचानों को बढ़ावा देना और राष्ट्रीयता की रीढ़ को कमजोर करना। 'आत्म-पहचान' हमारी समझ से , राष्ट्रीयता की 'जान' (स्पिरिट) है। इसी से देश का चौतरफा विकास होता है। आर्थिक , वैज्ञानिक, कलात्मक, साहित्यिक सभी क्षेत्रों में।" [17]जातीय विकास के साथ राष्ट्रीय विकास का यह सह-संबंध वास्तविक प्रगति का एक महत्वपूर्ण घटक है।

डा. रामविलास शर्मा हिन्दी जाति के चौतरफे विकास का स्वप्न संजोए हिन्दी जाति के पुनर्गठन की बात बार-बार करते हैं। इस सिलसिले में वे इतनी दूर तक चले जाते हैं कि सारे हिन्दी प्रदेशों को मिलाकर एक राज्य बना दिए जाने की माँग तक करने लगते हैं – "जिसे हम जातीय चेतना कहते हैं और जिसके बिना किसी संस्कृति का अस्तित्व नहीं , उसका विकास हमारे यहाँ कम हुआ है। जब तक जातीय चेतना की कड़ी को नहीं पकड़ा जाएगा, हिन्दी भाषा के सारे जनपदों को मिलाकर एक बड़ा राज्य नहीं बनाया जाएगा , तब तक यहाँ जातीय विकास नहीं हो सकता। जातीय संस्कृति के विकास के लिए यह बहुत जरूरी है कि इस संस्कृति के जो भी संवाहक हैं, वे एक राज्य के अन्तर्गत संगठित हों।" [18]डा. शर्मा के इस अतिवादी दृष्टिकोण की आलोचना भी बार-बार हुई है। सुधीर रंजन सिंह लिखते हैं – "हिन्दी अस्मिता कैसे तैयार हो ? समाधान के स्तर पर , एकता के अनेक सांस्कृतिक चिह्नों की पहचान के बावजूद ,रामविलास शर्मा स्थूलीकरण का शिकार होते हैं। इस बात पर ज़ोर देने लगते हैं कि हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों को एक हो जाना चाहिए, उनकी विधानसभाएँ एक हो जानी चाहिए, आदि। हमारी समझ से यह कोई हल नहीं है। क्या संयुक्त परिवार रहने से एकता भी रहती है ? बिना संयुक्त परिवार के भी लोगों में 'हम' का भाव रह सकता है , और शायद ज्यादा ही रहता हो। ... अस्मिता का प्रश्न सांस्कृतिक विवेक से जुड़ा है। सांस्कृतिक विवेक के धरातल पर जुड़ाव न हो तो पूरी पृथ्वी की विधानसभाओं को एक करने से भी कुछ नहीं होगा, हमारी समझ में उसके बिना लोकतंत्र भी कुछ काम न आएगा।"[19]

'हिन्दी' जाति के साथ कई समस्याएँ हैं। इतने विशाल प्रदेश में फैली एक जाति के समक्ष समस्याएँ होना स्वाभाविक भी है पर आज ये समस्याएँ और भी जटिल हो गई हैं। डा. शंभुनाथ संकेत करते हैं – "हिन्दी जाति दीर्घ समय से विकासशील अवस्था में है, उसके गठन में पेचीदगियाँ साधारण नहीं हैं , अवरोध साधारण नहीं हैं। अब वैश्वीकरण और वित्तीय पूँजीवाद भी अपने ढंग से जातीय समस्याएँ पैदा कर रहा है। ... वैश्वीकरण द्वारा परिचालित नया पूँजीवाद समाज में 'सांस्कृतिक एकरूपता' और 'सामाजिक भिन्नता' ला रहा है। एकध्रुवीकरण के साथ अंतर-जातीय विभेद ला रहा है। जातीयता का सवाल नया पूँजीवाद तय करे , इससे पहले आम हिन्दी जनता को तय कर लेना होगा। ... रामविलास शर्मा की हिन्दी जाति की अवधारणा व्यर्थ नहीं है , केवल जातीय जागरण से संबंधित अतिरंजनाएँ दूर करनी होंगीं।"[20]

साम्राज्यवाद के कुटिल षड्यन्त्र का एक पक्ष विश्व की जातियों के बीच चली आ रही जातीय चेतना की स्मृतियों को मिटा देना भी है। आज हम भाषा और बोली के नाम पर एक दूसरे से लगातार दूर होते जा रहे हैं , टूटते जा रहे हैं और निरन्तर टूटते जाने पर खुशी भी मना रहे हैं। डा. शर्मा लिखते हैं – "हमारे देश में साम्रज्यवादी प्रभुत्व और सामन्ती अवशेषों के कारण जातीय निर्माण की प्रक्रिया अवरूद्ध रही है। इसलिए यहाँ इस तरह के प्रश्न महत्वपूर्ण हैं कि ब्रज या बुन्देलखंड की भाषा किसी स्वतंत्र जाति की भाषा है या हिन्दी भाषा की बोली है।"[21]डा. शर्मा ने अपने महत्वपूर्ण लेखन कर्म द्वारा ऐसे भ्रमों का तार्किक जवाब दिया है। उनकी हिन्दी जाति की अवधारणा इस मायने में अति महत्वपूर्ण स्थापना है। डा. शंभुनाथडा. शर्मा की जाति संबंधी अतिरंजनाओं पर प्रश्न चिह्न लगाने के बावजूद लिखते हैं – "रामविलास शर्मा की हिन्दी जाति की अवधारणा एक बंद और अंधी अवधारणा नहीं है, उसमें पर्याप्त स्पेस है। उनकी आलोचना न केवल हिन्दी समाज की जातीय और जनतांत्रिक चेतना का बल्कि नए सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के खिलाफ़ भारतीय संघर्ष का एक बड़ा हथियार है।"[22]

'हिन्दी जाति' को उसकी गौरवशाली परम्परा और शक्ति की याद दिलाते हुए डा. रामविलास शर्मा ने कभी बड़ी उम्मीदों के साथ भविष्य का एक चित्र आँकते हुए लिखा था , - "हिन्दी भाषी इलाका भारत का सबसे बड़ा जातीय इलाका है। संख्या के विचार से हिन्दुस्तानी जाति दुनिया की तीन-चार सबसे बड़ी जातियों में गिनी जाएगी। ऋग्वेद और महाभारत की रचना इसी प्रदेश में हुई है। यहाँ की नदियों के किनारे बाल्मिकी और तुलसी ने अपने अनुष्टुप और चौपाइयाँ गाई हैं। तानसेन और फैयाजखाँ , हाली, मीर, अकबर, गालिब,

भारतेन्दु, प्रेमचंद, निराला यहीं के रत्न हैं। ताजमहल और विश्वनाथ के मन्दिर यहीं के हाथों ने गढ़े हैं। आल्हा और कजली ने सैकड़ों साल तक यहीं का आकाश गुँजाया है। अठारह सौ सत्तावन में यहीं की धरती हिन्दुओं और मुसलमानों के खून से सींची गई है। जिस दिन यह विशाल हिन्दी प्रदेश एक होकर नये स्वाधीन जनजीवन का निर्माण करेगा, उस दिन इसकी संस्कृति एशिया का मुख उज्जवल करेगी। किसानों और मजदूरों की एकता जो जनता की एकता की धुरी है , वह दिन निकट लाएगी। हिन्दी और उर्दू के लेखकों को इस जनता के हितों को ध्यान में रखकर अपनी जातीय परम्परा के अनुसार लोकप्रिय भाषा और जनवादी साहित्य के विकास में आगे बढ़ना चाहिए।"[23] पर हिन्दी जाति के महानायक की यह आशा जातीय चेतना के अभाव में लगातार धुँधलाती गई है। और प्रतिगामी परिणाम ही ज्यादा सामने आए हैं।

इसमें कोई शक नहीं कि डा. रामविलास शर्मा की हिन्दी जाति की अवधारणा में कई विसंगतियाँ हैं और इस ओर सुधी विद्वानों ने बार-बार ध्यान भी दिलाया है।मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है – "रामविलास शर्मा ने हिन्दी जाति की संस्कृति और उसके जातीय साहित्य की जो व्याख्या की है , उसमें कहीं-कहीं वर्गीय आधार और विचारधारात्मक प्रभावों की ओर संकेत है , लेकिन कई बार उनकी उपेक्षा भी हुई है। वे भक्ति आंदोलन को जातीय उत्थान का सांस्कृतिक प्रतिबिंब कहते हैं , उसके काव्य के कुछ पक्षों के वर्गीय आधार को भी स्पष्ट करते हैं , लेकिन उसके भीतर के विचारधारात्मकअंतर्विरोधों की उपेक्षा करते हैं। कई बार परंपरा की रक्षा की भावना के कारण अंतर्विरोधों को तर्कजाल से ढकने की भी कोशिश करते हैं। हिन्दी नवजागरण और उसके साहित्य के विश्लेषण में भी प्रायः यही पद्धति अपनाई गई है। यहाँ भी हिन्दी नवजागरण और उसके साहित्य की प्रगतिशीलता सिद्ध करने की चिंता के कारण वर्गीय आधार और विचारधारात्मक अंतर्विरोध पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।" [24]इसतरह यह अवधारणा काफी कुछ संशोधन , परिमार्जन, परिवर्धन की माँग रखती है। वास्तव में आज हिन्दी क्षेत्र में विखंडनकारी शक्तियाँ जिसतरह का तांडव मचाये हुए हैं वहाँ उनसे प्रतिरोध की सैद्धांतिकी गढ़ने के क्रम में डा. रामविलास शर्मा की हिन्दी जाति की अवधारणा को एक आधार के रूप में ही स्वीकारा जा सकता है।

निष्कर्ष

अपनी मूल चिन्ता के सन्दर्भ में डा. शर्मा की हिन्दी जाति की अवधारणा कहीं से भी बेबुनियाद नहीं ठहरती है , जरूरत है तो बस उसका समुचित विकास किया जाये। सबसे बड़ी बात जो इसतरह के तमाम विचार-विमर्श से उभरकर आती है, वह है हिन्दी जाति की मौजूदगी का ठोस अहसास। यह एक ऐसी जाति है जो लगातार संकटों से जूझती आगे बढ़ती आई है पर दुर्भाग्य से खुद को ही कभी यह विश्वास न दिला सकी कि 'वह है'। उसे उसकी शक्ति से अपरिचित रहने/रखने के ढेरों कारण रहे हैं। परन्तु इसी वज़ह से हमारे जातीय और राष्ट्रीय विकास की परिकल्पना को कितना आघात पहुँचा है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।डा. शर्मा अपने विशद लेखन कर्म द्वारा इस जाति के उन तत्वों की खोज करते हैं जिससे वह अपनी वास्तविक शक्ति से परिचित हो सके। जातीय प्रगति के साथ-साथ राष्ट्रीय प्रगति के हित में उनका यह कार्य अतुलनीय है।

संदर्भ :

1. वर्मा धीरेन्द्र,हिन्दी राष्ट्र या सूबा हिन्दुस्तान,लीडर प्रेस,प्रयाग,प्रथम संस्करण,1930,पृ.-1 (वक्तव्य)
2. वही, पृ.-1
3. वही, पृ.-2
4. वही, पृ.-40
5. वही, पृ.-41
6. वही, पृ.-50-51
7. शर्मा रामविलास,भाषा और समाज,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली, पाँचवा संस्करण,2002,पृ.-31
8. वही, पृ.-279
9. शर्मा रामविलास, भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, खंड-2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2006, पृ.-7
10. वही, पृ.-7
11. वर्मा धीरेन्द्र, हिन्दी राष्ट्र या सूबा हिन्दुस्तान, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1930, पृ.-56
12. शर्मा रामविलास, परम्परा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,1981, पृ.-24
13. शर्मा रामविलास, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवा संस्करण,2002, पृ.-309-310

RRIJM 2015, All Rights Reserved

14. शर्मा रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,1977, पृ.-19
15. शर्मा रामविलास,परम्परा का मूल्यांकन,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,प्रथम संस्करण,1981,पृ.-28
16. वर्मा धीरेन्द्र,हिन्दी राष्ट्र या सूबा हिन्दुस्तान, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1930, पृ.-56-57
17. सिंह सुधीर रंजन, हिन्दी समुदाय और राष्ट्रवाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ.- 9
18. शर्मा रामविलास,मेरे साक्षात्कार,किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994, पृ.-332
19. सिंह सुधीर रंजन, हिन्दी समुदाय और राष्ट्रवाद,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ.- 106
20. शंभुनाथ,हिन्दी नवजागरण और संस्कृति,आनंद प्रकाशन,कोलकाता,प्रथम संस्करण,2004,पृ.- 176
21. शर्मा रामविलास,भाषा और समाज,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,पाँचवा संस्करण,2002,पृ.- 50
22. शंभुनाथ,हिन्दी नवजागरण और संस्कृति,आनंद प्रकाशन,कोलकाता,प्रथम संस्करण,2004,पृ.- 188
23. शर्मा रामविलास, भारत की भाषा समस्या, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2003, पृ.- 91
24. पाण्डेय मैनेजर, साहित्य और इतिहास दृष्टि,अरूणोदय प्रकाशन,दिल्ली, संस्करण 1992, पृ. - 181